International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 04(II), October - December, 2022, pp. 329-334

'अंधायुग' के चरित्रों का नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक संवेदना

डॉ. मनोज कुमार कैन*

प्रस्तावना

रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'कथा ज्योति की अंधों के माध्यम से' शीर्षक लेख में लिखा है कि "रचना की स्वायत्त दुनिया में पाप–पुण्य की सापेक्ष स्थिति उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी कि चरित्रों की अपनी–अपनी नियति लब्ध करने की यात्रा। हर चरित्र की मानवीय विशिष्टता यहीं समझी जा सकती है। इन नियति–यात्राओं का अंकन अपने में जितना पूर्ण है, समग्र रचना का स्वरूप उतना ही सुगठित होगा। इस दृष्टि से 'अन्यायुग' के चरित्र नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक संवेदनशीलता को साथ–साथ वहन करते हैं और उसमें से किसी को सहसा अच्छा या बुरा कहना कोई अर्थ नहीं रखता। जब चरित्रों के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक विश्लेषण का यत्न होगा तो हर तथाकथित बुराई के पीछे कोई ऐस कारण निकलेगा जिसके लिए चरित्र को जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकेगा। इसी माने में कहा जा सकता है कि कला के क्षेत्र में नीति का आधार कहीं बाहर से नहीं आएगा, वरन् वह उसी में से निःसृत होगा। इस दृष्टि से 'अन्धायुग' में चरित्र के प्रति–चरित्र हैं पर वे परस्पर एक–दूसरे को काटते नहीं वरन् एक–दूसरे के आमने–सामने होकर रचना–संसार को पूर्णतर बनाते हैं। कृष्ण के सन्दर्भ में अश्वत्थामा, युयुत्सु और माता गांधारी की ऐसी ही स्थिति है।"

कहना न होगा कि 'अंधायुग'के चरित्रों में जो नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक संवेदनशीलता है वह नाटक के रचना–संसार को पूर्ण बनाने और कथा–तत्व को पूरी तरह से अभिव्यक्त करने में सहायक है। "कला, चाहे वह यथार्थवादी कला ही क्यों न हो, एक आत्मपरक प्रयास है।" नाटककार की वस्तुपरकता और कवि की आत्मपरकता को एक साथ निभाने की प्रक्रिया में काव्यनाटककार धर्मवीर भारती के चरित्र अपनी वस्तुपरकता में नाटकीय संघर्ष और आत्मपरकता में काव्यात्मक संवेदनशीलता का वहन करते हैं। और इसके पीछे उनकी विडम्बनापूर्ण स्थिति और इसका बोध दोनों है। ये चरित्र अपने वाह्य जगत के साथ सामंजस्य की बजाय द्वंद्व रूप में ज्यादा स्थित हैं, जो इनके अन्दर एक घिराव और तनाव की स्थिति पैदा करता है। 'अँधायुग' को पढ़ने के दौरान मुझे ऐसा लगता है कि संवादों को बोलने के दौरान पात्र अधिकतर अतीत में जीते हैं और अतीत की स्मृतियों में जीते–जीते अचानक किसी पात्र के द्वारा सक्रिय हस्तक्षेप के कारण नाटक में गति का संचार करना शुरू कर देते हैं।

गुजारिश यही है कि 'अन्धायुग' को काव्यनाटक कहते समय काव्य और नाटक को अलग–अलग नहीं देखा जाए। किसी एक की प्रधानता और दूसरे की गौणता का प्रश्न उठाना ही बेमानी है। काव्यत्व और दृश्यत्व दोनों के मिलन से ही 'काव्यनाटक' का सृजन होता है और चरित्रों के संवाद भी इसी सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं, जिनके माध्यम से उनकी विशेषताएँ प्रकट होती हैं। चरित्र और घटनाओं के विकास में जब शब्दों की ताकत चुकने लगती है, तो नाटकीयता उसे सहारा देती है और जब बातें दृश्य बनाकर प्रस्तुत नहीं हो पाती हैं, तो वैसी सघन अनुभूतियों के अभिनय क्षणों को पुष्ट और सार्थक बनाने में है काव्यत्व उसकी मदद करता है 'अन्धायुग' एक ऐसी ही रचना है। 'अन्धायुग' के नाटकीय चरित्र अपनी नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक

* एसोसिएट प्रोफेसर, पीजीडीएवी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

संवेदनशीलता के कारण ही हिंदी रंगमंच के विशिष्ट चरित्रों के रूप में अपनी पहचान बना सकें हैं। दरअसल नाटक में चरित्र होते हैं, दृश्य होते हैं, पात्र होते हैं और कार्य–व्यापार होता है। इसके विपरीत कविता में भाव होते हैं, कोई क्रिया या घटना नहीं होती। और अगर कविता में दोनों तत्व मिल जाएँ तो वह ज्यादा प्रभावपूर्ण तरीके से मंच पर आती है। और अभिनय की ताजा, संवेदनशील और आधुनिक शैली का जन्म होता है। यही कारण है कि 'आषाढ़ का एक दिन', 'मेघदूत' और 'अंधायुग' ने रंगमंच पर अपनी पहचान कायम की। शम्भु मित्र और उत्पल दत्त जैसे अभिनेता ने या अल्काजी ने ऐसे ही प्रयोग किए थे। किसी भी अभिनेता के लिए शब्द अभिनय के अस्त्र होते हैं। और शब्दों की सघनता के रूप में कविता नाटक से नजदीक है। कविता में जहाँ 'कहा जाना' महत्वपूर्ण है, वहीं नाटक में 'होना' महत्त्वपूर्ण है। कविता का आन्तरिक संसार पूरी तरह से 'शब्द' पर आश्रित होता है और उसका वर्णन किया जा सकता है, जबकि नाटक में अभिनेता कुछ कहते हुए, कुछ करता भी है। अर्थात कहने को एक 'दैहिक आकार' प्रदान किया जाता है। 'अंधायुग' के चरित्र अपनी काव्यात्मक संवेदनशीलता के कारण ही कभी–कहीं आन्तरिकता और आत्मगत होने की प्रक्रिया से गुजरते हैं, और किसी एक भाव, बिम्ब को फोकस करते हर विकसित होते हैं। नाटक में चरित्रों का सृजन कुछ इस तरह किया जाता है कि एक पात्र का कथन दूसरे के उपकथन को प्रेरित करता है, जिससे नाटक का विकास होता है। रंगमंच पर नाटक के सामाजिक स्वरुप को (जो उसकी प्रकृति में निहित होता है) कविता की मूल आदिमता से मिलाने का काम अभिनेता की मानवीय उपस्थिति के द्वारा किया जाता है। 'अन्धायुग' में धर्मवीर भारती ने चरित्रों के अतीत की बात कहते हुए उनके आन्तरिक गहन, उलझे और अनकहे विचारों और भावनाओं को सामने लाते हुए उन परिस्थितियों को सामने रखा है, जिनको दृश्य रूप में नहीं प्राप्त किया जा सकता है। 'अंधायुग' के मंचन के दौरान यह काव्यात्मकता ही चरित्रों को जीवन्तता और सजीवता प्रदान करती है, जो नाटकीय संघर्ष को और तीव्र कर देती है। अर्थात पाठ और प्रदर्शन दोनों ही दृष्टियों से 'अन्धायुग के चरित्रों की वह विशिष्टता नाटककार की सर्जनात्मक उपलब्धि कही जा सकती है।

कविता की आत्मयता, भावात्मकता और गहन रागात्मकता की बहुअर्थी, व्यंजनापूर्ण, बिम्बात्मक और भावचित्रात्मक भाषा की तुलना में नाटक की भाषा दृश्यता प्रधान, वाद–विवाद संवादमयी, घात संघात और प्रति–संघात्मक होती है। नाटककार के द्वारा रची होने के बावजूद यह चरित्र की भाषा होती है, जिसमें एक अभिनेता की दैनिक जरूरतों को समायोजित करने का काम करना पड़ता है। और कहना न होगा कि अंधायुग के पात्रों की भाषा दोनों ही विशेषताओं से युक्त है। भाषा की काव्यात्मकता और नाटकीयता दोनों ही दृष्टियों से अंधायुग के चरित्रों की भाषा 'काव्यनाटक' के मर्म को उभारने में ही अपनी विशिष्टता का बोध कराती है। नाटक की संक्षिप्तता नाटक की भाषा को काव्यात्मक भाषा तरफ ले जाती है। "दरअसल नाटक कविता के अत्यन्त निकट है, उसका एक महत्वपूर्ण कारण तो दोनों का मनुष्य के आद्य प्रश्नों और आदि मता की ओर झुकाव है। कविता तो भावात्मक, रागात्मक और आद्य बिंबों की ओर झुकी होती है। नाटक का अंतिम माध्यम अभिनेता भी किन्हीं अर्थों में एक आदिम देह को ही अपना माध्यम बनाता है।" गोविंद चातक के अनुसार "नाटक के लिए वह महत्वपूर्ण नहीं कि पात्र कैसी भाषा बोलते हैं, वरन यह कि वह कितनी नाटकीय और अभिव्यक्तिपूर्ण है। नाटक का जब पूरा ढाँचा ही काव्य गर्भित होता है तो उसे किसी और कविता की जरूरत नहीं पड़ती।" इस पूरे प्रसंग में ही एक काव्यनाटक 'अंधायुग' के चरित्रों के नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक संवेदनशीलता पर बात की जा सकती है, क्योंकि नाटक में भाषा के माध्यम से 'संवाद' ही चरित्रों की जान होते हैं। चरित्रों की भाषा ही उनकी विशेषताओं को प्रस्तुत करती है और जब भाषा काव्यात्मक और नाटकीय दोनों हो, तो जाहिर है कि 'अंधायुग' के चरित्र एक साथ काव्यात्मक और नाटकीय दोनों होंगे। यह अलग बात है कि दोनों विशेषताएँ कहीं–कहीं एक साथ देखने को मिल सकती हैं, तो कहीं अलग–अलग भी। अपनी काव्यात्मक संवेदनशीलता के कारण ही एक तरफ अश्वत्थामा, संजय, युयुत्यु और गांधारी जैसे चरित्र कृष्ण के चरित्र से जुड़ाव महसूस करते हैं, तो दूसरी तरफ अपने नाटकीय संघर्ष के कारण इन चरित्रों का कृष्ण के प्रति एक अलगाव का बोध भी देखने को मिलता है। बच्चन सिंह ने 'अंधायुग' पर विचार करते हुए लिखा है कि "गद्य नाटकों में नाटकीय स्थितियों और परिस्थितियों की नियोजना का जितना अवकाश मिलता है, गीति नाट्यों में उतना अधिक नहीं मिलता। किसी

विशेष परिस्थिति को उत्पन्न करने के लिए अनुकूल घटनाओं और परिवेशों का संघटन गीति नाट्यकार के लिए सम्भव नहीं है। वाह्य दृश्य विधान के स्थान पर मानसिक संघर्षों का चित्रण ही उसका प्रमुख लक्ष्य होता है। इन मानसिक परिस्थितियों के द्वारा ही पात्रों का चरित्र उद्घाटित होता है, पर इसे परखने कि लिए आवश्यक है कि चरित्रों के मानसिक संघर्ष के साथ नाटक की कविता और 'क्रिया व्यापार' के सामंजस्य की जाँच कर ली जाय। इस गीति नाट्य के प्रमुख पात्र धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, गान्धारी, युयुत्सु और संजय हैं। इनके मानसिक संघर्षों के कई स्तरों का उद्घाटन करते समय इस बात का ख्याल रखा गया है कि काव्यत्व और क्रिया–व्यापार से पात्रों का सम्बन्ध टूट न पाए।"

और यह काव्यतत्व 'नाटकीय सुसम्बद्धता (Pramatic relevance) पर निर्भर करता है। अश्वत्थामा अपनी विशेष मनःस्थितियों और अनेक प्रकार के क्रिया–व्यापारों के कारण 'अंधायुग' का एक '।इदवतउंस' पात्र बन गया है। उसके जीवन के घनीभूत क्षणों में, उसके मानसिक संघर्षों में और सबसे बढ़कर लम्बे लम्बे संवादों में उसकी काव्यात्मक संवेदना पाठक की सहानुभूति को सबसे अधिक प्रभावित करती है। 'अंधायुग' में अश्वत्थामा के चरित्र में सर्वाधिक नाटकीयता देखने को मिलती है, जिसकी परिणति उसकी आंतरिकता के कारण काव्यात्मक संवेदना में हो जाती है।

संजय, युयुत्सु और गांधारी भी ऐसे ही पात्र हैं। जयदेव तनेजा ने 'अंधायुग' के शिल्प पर विचार करते हुए लिखा है कि "मानवता के विविध स्तरों की एक सम्पूर्ण झाँकी भी हम इस रचना में देख सकते हैं। एक ओर देवत्व के स्तर पर यदि कृष्ण (व्यास, शंकर भी) प्रतिष्ठित हैं, तो दूसरी ओर पशुत्व के स्तर पर अश्वत्थाता मौजूद है। मनुजता के अन्य धरातलों पर यदि विदुर, धृतराष्ट्र, संजय, गांधारी, कृपाचार्य, भिक्षुक, सैनिक और प्रहरी विद्यमान हैं, तो प्रेत–योनि में भटकते हुए युयुत्सु और वृद्ध याचक भी यहाँ उपस्थित हैं। 'अंधायुग' में मनुष्य के सभी रूपों और स्तरों की संपूर्ण अभिव्यक्ति का एक और प्रमाण यह भी है कि यहाँ हमें मनुष्य की लगभग सभी मूल वृत्तियों की तीव्र नाट्याभिव्यक्ति देखने को मिलती है।"

धर्मवीर भारती का 'नाट्य भाषा संबंधी चिंतन' उनके पात्रों के सृजन का एक प्रमुख आधार है। उन्होंने लिखा है कि "भाषा को संस्कार तब मिलता है, जब वह काव्य– भाषा के रूप में भली–भाँति प्रयुक्त हो ले ताकि हर शब्द को समुचित विकास मिल जाए" और नाटक अन्ततोगत्वा कविता की सबसे निकटतम विधा ही है। जाहिर है शब्दों का अर्थ उसके प्रयोग पर निर्भर करता है। 'अंधायुग' में शब्दों के प्रयोग संबंधी धर्मवीर भारती की काव्यात्मक दृष्टि ही पात्रों के संघर्षों को अभिव्यक्त करती है, जिसकी अनिवार्य परिणति चरित्रों के नाटकीय संघर्ष और काव्यात्मक संवेदनशीलता में होती है। जयदेव तनेजा ने गीति नाट्य और भाव नाट्य से काव्य नाट्य की भिन्नता दिखाते हुए लिखा है कि "काव्य–नाटकों में मनुष्य का अन्तर्जीवन और बहिर्जीवन एक साथ ही चित्रित होता है।" साथ ही "आवेगों की तीव्रता के कारण काव्य–नाटकों में छंदोबद्ध, लयपूर्ण और अलंकृत भाषा का व्यवहार किया जाता है।" इब्राहिम अल्काजी ने 'अंधायुग' के चरित्रों की विशेषता बताते हुए लिखा है कि They are clearly defined. Each character has a characteristic rhythm and language which sets his apart from the others. Aswattama, Sanjay, Yuyutsu, Yudhishthir, Gandhari Dhritrashtra… each is chiselled out with a few sharp coutours, each has a texture and a green uniquely his own And yet they remain part of a composite whole, in the sense in which Rodin's The Burghers of Calais are -

कृष्ण अन्धायुग में एक जटिल किन्तु रोचक चरित्र हैं। धर्मवीर भारती ने कृष्ण को दुहरी भंगिमा प्रदान करते हुए उसे नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया है। एक तरफ कथा गायन के माध्यम से कृष्ण का परम्परागत प्रभु रूप उभरता है, तो दूसरी तरफ अपने क्रिया–कलापों और वृद्ध याचक के संवादों में एक 'मानवी रूप' सामने आता है। जो 'प्रभु' के साथ ही नाटक के चरित्रों के द्वारा मर्यादाहीन, निकम्मी धुरी, और वंचक भी कहा जाता है। कृष्ण के चरित्र प्रतिचरित्र के रूप में चरित्र आस्था और अनास्था के प्रश्न से जूझते हैं। गांधारी का चरित्र एक ऐसा चरित्र है जिसमें एक पत्नी, शत्रु, माँ, और भक्त कई रंग देखे जा सकते हैं। नाटक का वह दृश्य अद् भुत नाटकीयता और करुणा से ओत–प्रोत है जिसमें युद्ध के बाद लौटा हुआ युयुत्सु को गांधारी व्यंग्यों के द्वारा आहत करती है–

"बेटा
भुजाएँ ये तुम्हारी
पराक्रम भरी
थकी तो नहीं
अपने बन्धुजनों का
वक्ष करते – करते?
(चुप)
पांडव के शिविरों के वैभव के बाद
तुम्हें अपना नगर तो
श्रीहत–सा लगता होगा?
(चुप)
चुप क्यों हो?"

युयुत्सु 'अंधायुग' में कृष्ण के प्रति सर्वाधिक आस्थावान है, लेकिन कृष्ण के प्रति सर्वाधिक अनास्था का स्वर भी उसी का है। नाटक के विकास के साथ उसके आस्था और विश्वास, अनास्था और अविश्वास में बदल जाते हैं। और आस्था बनाम अनास्था ही उसके चरित्र को नाटकीयता प्रदान करती है। संजय 'तटस्थ' और 'निरपेक्ष सत्य' के रूप में सामने आने के बावजूद प्रभु तक पहुँचने का प्रयास करता है–

"मुझको मत पग दो लेकिन तुम तक मैं
पहुँच कर रहूँगा प्रभु!"

कविता जब भी अपने मूल रूप से आगे कथा के रूप की ओर बढ़ती है, तो इसकी न्यूनतम मानवीय उपस्थिति एक से बढ़कर दो हो जाती है और तब नाटकीय संघर्ष देखने को मिलता है। जबकि काव्यात्मक संवेदनशीलता बहुत हद तक व्यक्ति के गहन मानवीय संसार की चीज है। यह वाह्य का आभ्यंतरीकरण ज्यादा है। चरित्रों का संघर्ष जब बाहर–बाहर या भीतर–भीतर का न रहकर बाहर से भीतर और भीतर से बाहर एक साथ होने लगे तो उनमें काव्यात्मक संवेदनशीलता और नाटकीय संघर्ष दोनों दिखाई देता है। आश्चर्य नहीं कि 'अन्धायुग' को आलोचकों ने लम्बी कविता के रूप में भी पढ़ा है। लम्बी कविता प्रकृत्या नाटकीय होती है इसमें स्थैर्य और नैरन्तर्य दोनों होता है। मुक्तिबोध ने 'अँधायुग' की समीक्षा करते हुए इसके सामाजिक ह्रास की कुछ विशेषताओं को फैन्टेसी के जरिए व्यक्त करने वाली रचना माना है। "इस फैण्टेसी का भावनात्मक केन्द्र मौजूदा सभ्यता की समीक्षा है, जो महाभारत के कुछ चरित्रों के अंकन के द्वारा प्रस्तुत की गई है।"

'अन्धायुग' काव्यनाटक के चरित्रों के घात–प्रतिघात जिस यथार्थ का बोध करते हैं, जो प्रश्न खड़े करते हैं, वे पाठक को यह कहने के लिए बाध्य करते हैं कि 'अन्धायुग एक अनुत्तरित प्रश्न की व्याकुलता है'। "अन्धायुग उस तरह से चरित्र प्रधान काव्य नाटक नहीं है, जैसे अन्य नाटक हुआ करते हैं। उनमें चरित्र का कोई विकास नहीं है, वे बने बनाए हैं। उनका महत्व और मूल्य यही है कि वे लेखक के भाव –विचार और भाषा बोलते हैं तथा अनेक तिगड्डों पर बड़े होकर उन तिगड्डों की स्थितियों की दृष्टि से एक यथार्थ के प्रति प्रतिक्रिया करते हैं। लेखक द्वारा यथार्थ के आकलन के क्षेत्र के वे विभिन्न प्रतीक हैं, उसकी दृष्टि और वाणी को प्रकट करने के एक साधन हैं। इस दृष्टि से यह दृश्य–काव्य आत्मपरक है।"

और अपनी अधिक आत्मपरकता (वस्तुपरकता के सापेक्ष) के कारण ही संघर्ष के क्षणों में ये पात्र संवेदनात्मक रूप से प्रभावी बन पाते हैं। जिस नैतिक गिरावट या ह्रास को धर्मवीर भारती 'अन्धायुग' के पात्रों के द्वारा व्यक्त करते हैं उसके सूत्र ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भों की बजाय व्यक्तिगत और मनोवैज्ञानिक सन्दर्भों से जुड़े हैं। व्यक्ति मानव की शुभेच्छात्मक संवेदनाओं के नैतिक दृष्टिकोण की सहायता से ही धर्मवीर भारती

सभ्यता की आलोचना करते हैं। मुक्तिबोध को इसीलिए ऐसा लगा था कि "धर्मवीर आरती का वैचारिक अन्तरंग छायावादी है।" कहना न होगा कि मुक्तिबोध की दृष्टि जो कि मार्क्सवाद से परिचालित हो रही थी धर्मवीर भारती को इस रूप में पाती है। बहरहाल! 'अंधायुग' के रचना विधान का वैशिष्ट्य ही यही है जो अपनी समग्रता में "परंपरागत भारतीय महाकाव्य की उदात्तता और पश्चिमी नाटक विशेषतः ट्रैजेडी के संघर्ष का तीखापन यहाँ कृष्ण और अश्वत्थामा के विरोधी युग्म को रूपायित करता है। युयुत्सु में समकालीन द्विधाग्रस्त मानव मन की पहचान है और इन सबके बीच खोज आस्था की है जिसके प्रतीक कृष्ण हैं। पर वस्तु आस्था की प्रक्रिया सम्पूर्ण रचना की आन्तरिक क्रिया प्रतिक्रिया से जुड़ी है, न कि किसी निरपेक्ष बनी बनायी स्थिति मूल्य या कि चरित्र से।"

आस्था का विकास अनास्था के तिरस्कार से न हो कर उसकी अपनी स्थिति के साथ है–

आस्था तुम लेते हो

लेगा अनास्था कौन?

इसी आस्था और अनास्था के बीच अन्तर और संबंध से बार–बार टकराते हुए चरित्र 'अन्धायुगं' के विशाल कैनवास का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि गान्धारी के लिए कृष्ण के पुत्र रूप को लेकर यह प्रश्न आता है तो अश्वत्थामा और युयुत्सु के लिए 'प्रभुं' रूप को लेकर "'अन्धायुग' बनाम आस्था का संघर्ष नाटक के चरित्रों को एक साथ संघर्षशील और संवेदनशील दोनों बनाता है। अँधेरे की शक्तियों से जूझने का उपक्रम अपने–अपने ढंग से निराला में है, मुक्तिबोध में है और भारती में है। आधुनिक कविता का यह अपने आप में अपराजेय समर है।"

'अन्धायुग' के चरित्रों को कथा और विचार से एक साथ जोड़ते हुए धर्मवीर भारती ने इसका विकास पुराण कथा और प्रतीक के बीच की स्थिति से किया है। कृष्ण अपने शाश्वत आकर्षण के बावजूद अश्वत्थामा को नाटक का केन्द्रीय पात्र बनने से नहीं रोक पाते हैं। एक तरफ गांधारी से यह कहने वाले कृष्ण कि–

जीवन हूँ मैं

तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ

शाप यह तुम्हारा स्वीकार है।

यह भी कहते हैं–

प्रभु हूँ या परात्पर

पर पुत्र हूँ तुम्हारा

तुम माता हो।

द्रौपदी को बहन मानकर कृष्ण के सख्य भाव का विशिष्ट एकान्तिक पक्ष उभरता है, गान्धारी को माँ रूप में देखकर कृष्ण से जुड़े वात्सल्य भाव का वैसे ही एक व्यापक विराट रूप बनता है। "इन दोनों सम्बन्धों में से एक को रेखांकित किया आधुनिक विचारक राम मनोहर लोडिया ने, दूसरे को अंकित किया नये कवि धर्मवीर भारती ने। कृष्ण के चरित्र की यह तराश उनको आधुनिक संवेदना के निकट लाती है।" कृष्ण के इस चरित्र के प्रतिपक्ष में 'अंधायुग' का सर्वाधिक नाटकीय चरित्र अश्वत्थामा है। प्रतिहिंसा जिसका मूल्य है वह अश्वत्थामा अपने तमाम मानसिक संघर्षों और द्वंद्व के बावजूद पाठक की सर्वाधिक सहानुभूति का पात्र बन जाता है। याचक की नाटकीय तरीके से हत्या करने के बाद जब वह कहता है–

पता नहीं मैंने कथा किया।

मातुल मैंने क्या किया!

क्या मैंने कुछ किया।

"भाषा कैसे कविता होती है इसका यह अच्छा उदाहरण है।" वध के बाद अश्वत्थामा गीता के अनासक्त कर्मयोग की उक्ति पर तीखा व्यंग्य करता है–

इस वध के बाद

मांसपेशियों का सब तनाव

जैसे खुल गया

कहते क्या इसी को हैं अनासक्ति?

और कृष्ण के प्रबल प्रतिचरित्र के रूप में सामने आता है। 'अन्धायुग' में मूल्यों का सीधा सन्दर्भ होने के कारण संवाद कई जगह इसे 'वक्तव्य प्रधान' बना देते हैं। लेकिन चरित्रों के नाटकीय संघर्ष इसे 'काव्यनाटक' की संज्ञा देने का पूरा माद्दा रखते हैं।. मुख्तसर यह कि चूँकि 'अन्धायुग' एक काव्यनाटक है और इसकी भाषा काव्य भाषा और नाट्यभाषा दोनों है, इसके चरित्र काव्यात्मक संवेदनशीलता और नाटकीय संघर्ष दोनों को एक साथ वहन करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना– सं. पुष्पा भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2001, पृ– 455
2. नई कविता का आत्मसंघर्ष, पृष्ठ–169
3. नटरंग– 73, मार्च 2005 (लेख– नाट्य भाषा, काव्य भाषा और कथाभाषा, आशीष त्रिपाठी, पृष्ठ– 63
4. गोविन्द चातक, नाट्यभाषा, पृ.– 22
5. हिन्दी नाटक – बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2001, पृ.– 160–161
6. अंधायुग पाठ और प्रदर्शन– जयदेव तनेजा, राष्ट्रीय नाट्यविद्यालय दिल्ली 1998, पृ– 72
7. वही, पृ– 23
8. वही, पृ– 35
9. वही, पृ– 35
10. वही, पृ– 53
11. अन्धायुग– धर्मवीर भारती, किताब महल, इलाहाबाद 2005
12. पृ– 43
13. वही, पृ– 100
14. समीक्षा की समस्याएँ – मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1989, पृ– 134
15. वही, पृ– 135
16. वही, पृ– 135
17. धर्मवीर भारती की साहित्य साधना– सं. पुष्पा भारती, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली 2001, पृ– 451
18. वही, पृ– 452
19. वही, पृ– 454
20. वही, पृ– 454

❖◆❖